राजनीति मे राहुल गॉधी

मैं राजनीति मे हमेशा ही सोनिया गॉधी का प्रशंसक रहा हूँ। सोनिया जी ने जिस तरह प्रधानमंत्री पद के लिए स्वयं को पीछे करके मनमोहन सिंह को आगे बढाया, वह घटना उनके त्याग की प्रशंसा के लिए पर्याप्त है। व्यक्तिगत आचरण मे भी सोनिया बहुत खरी उतरी। सामाजिक सोच भी उनकी ठीक ठाक रही है, किन्तु पिछले 3–4 वर्षों से जिस तरह सोनिया जी पुत्र मोह मे सब कुछ भूल बैठों, उससे मेरा मन सोनिया जी के प्रति बहुत खट्टा हो गया। ऐसा लगा जैसे कि यूपीए–2 का कार्यकाल शुरू होते ही सोनिया जी ने राहूल गाधी को प्रधानमंत्री बनाने की तिकडम शुरू कर दी। सोनिया जी ऐसा मानती थी कि भारत की जनता बहुत भोली भाली है। वह सोनिया जी की इतनी तिकडमो को नही समझ पायेगी। सोनिया जी के आसपास रहने वाली चापलूसो की टीम भी सोनिया गॉधी जी को यही समझाती रही कि जनता इतनी समझदार नही है। लेकिन पॉच राज्यों के चुनावों ने यह सिद्ध कर दिया कि जनता सब कुछ समझती है। खासकर सोनिया गॉधी जी की इस तिकडम को तो बहुत अच्छी तरह समझ गई है। इन चुनावों के बाद जनता के इशारे कॉग्रेंस के सब लोग समझ गये, सिर्फ सोनिया गॉधी को छोडकर। सोनिया जी भी कैसे समझ क्योंकि पुत्र मोह मे उन्हें राहुल गॉधी प्रधानमंत्री के अतिरिक्त तो कुछ दिखाई नही दे रहा है।

वैसे तो सोनिया जी ने मनमोहन सिंह के उपर एक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद बनाकर उसमे जैसे–जैसे लोगों का चयन किया, वह चयन मनमोहन सिंह को भी कमजोर करने के लिए पर्याप्त था, और भारत की अर्थव्यवस्था को भो रसातल तक ले जाने वाला था। सोनिया गॉधी जी की यह चाल सफल हुई। मनमोहन सिंह लगातार बदनाम होते चले गये तथा अर्थव्यवस्था भी रसातल तक नीचे चली गई। चाहे विकास दर हो या मुद्रास्फोति अथवा डॉलर रूपये का विनिमय मूल्य। सभी जगह अर्थव्यवस्था गिरती गई। सारा खेल सोनिया गॉधी जी का खेला हुआ था तथा मनमोहन सिंह बदनाम हो रहे थे। सोनिया गॉधी जी को यह आभाष नही था, कि मनमोहन सिंह के साथ कॉग्रेंस पार्टी भी उखडती जा रही है। लेकिन पॉच राज्यों के चुनावों मे कॉग्रेंस पार्टी जिस तरह साफ हुई उससे यह स्पष्ट दिखने लगा कि 2014 का चुनाव निर्णायक होगा, जिसमे कॉग्रेस पार्टी को श्मशान तक पहुंचाने का श्रेय सोनिया गॉधी जी के खाते मे जाएगा। मैने पिछले चार वर्षों से लगातार सोनिया जी को सर्तक किया, कि वे मनमोहन सिंह को बदनाम करके राहुल गॉधी को आगे लाने का खतरनाक खेल खेल रही है। मै उस समय भी मनमोहन सिंह को अच्छा प्रधानमंत्री मानता था और अब भी मानता ह, किन्तु जिस तरह मनमोहन सिंह का बदनाम किया गया, उससे अब मनमोहन सिंह का प्रधानमंत्री बनना संभव नही है। मैने दूसरे क्रम मे नीतिश कुमार को रखा था। तीसरे क्रम मे अरविन्द केजरीवाल को और चौथे क्रम मे नरेंन्द्र मोदी को। मैने उस समय यह लिखा था कि यदि इन चारों के अतिरिक्त कोई और आ सकता है तो विचार किया जा सकता है। लेकिन इस बीच मे राहुल गॉधी का प्रवेश होता है तो पूरी ताकत से सबको मिलकर राहुल गॉधी को हरा देना चाहिए। और यदि आवश्यक हो तो पूरी कॉग्रेंस का भी सफाया करने मे कोई हर्जा नही है। प्रश्न राहुल गॉधी की योग्यता का नही है, प्रश्न तो भारत की जनता के उपर एक परिवार द्वारा प्रधानमंत्रो थोप देने के कलंक का है। राहुल गॉधी का प्रधानमंत्री बनना भारतीय राजनीति पर एक कलंक के अतिरिक्त कुछ नही है, क्योंकि इस तरह सत्ता, तिकडम करके अपने परिवार तक आरक्षित कर ली जाए, यह भारत की जनता के लिए कलंक के अलावा और क्या हो सकता है? मैने ज्ञानतत्व अंक 252 दिनाकॅ 15–31 अगस्त 2012 मे अपने मनोभाव प्रगट करते हुए यह बात लिखी थी। उस ज्ञानतत्व का लेख भी इस अंक मे पुनः प्रकाशित कर रहा हूँ। मै नही कह सकता कि कॉग्रेस पार्टी के वर्तमान पतन मे मेरे विचारों की कितनी भूमिका है और कितना समाज का मनोभाव मैने अपने लेख मे किया है? किन्तु इतना स्पष्ट है कि वर्तमान राजनैतिक वातावरण मे राहुल गॉधी का रसातल तक का पतन निश्चित है। कहीं ऐसा न हो जाए कि राहल गॉधी तो जाऍगें ही साथ ही साथ कॉग्रेंस पार्टी को भी डुबा कर जावें।

यदि सोनिया जी अपने परिवार के ही व्यक्ति को प्रधानमंत्री बनाने की तिकडम नही करती तो संभव था कि राहुल गॉधी एक बहुत ही योग्य राजनेता के रूप मे उभरकर सामने आते। प्रश्न राहुल गॉधी की योग्यता के ऑकलन का नही है, बल्कि प्रश्न तो नेहरू परिवार के व्यक्ति के प्रधानमंत्री बनने के कलंक का है। देश की जनता इस कलंक से मुक्त होना चाहती है। पूरा भारत जानता है कि इस परिवार ने प्रधानमंत्री पद की तिकडम के लिए किसी अन्य को न आगे आने दिया, न स्थापित होने दिया। अब भारत की जनता के पास स्पष्ट अवसर है कि वह इस परिवार की तिकडमों से मुक्त हो जाए। स्पष्ट दिखता है कि सोनिया जी एक मात्र वह हस्ती है जो कॉग्रेंस पार्टी को डुबा भी सकती है और उबार भी सकती है। यदि अब भी सोनिया जी यह स्पष्ट घोषणा कर दे कि अगले दस वर्षों तक भारत मे किसी भी रूप मे नेहरू परिवार का कोई व्यक्ति प्रधानमंत्री नही बनेगा, पूर्ण बहुमत मे आने के बाद भी नही बनेगा, तब तो कॉग्रेंस पार्टी डूबने से बच सकती है, अन्यथा कॉग्रेंस पार्टी को डूबने से कोई नही बचा सकता। मुझे लगता है कि सोनिया जी की ऑखों पर प्रधानमंत्री पद अपने परिवार तक आरक्षित करने का जो चश्मा लगा हुआ है, वह चश्मा उतारकर वे सच्चाई को देखने का प्रयास करेगी और परिणाम जो होना है वही होगा। यह कहना गलत है कि भाजपा जीत गई या मोदी की लहर है, यदि मोदी की लहर होती तो दिल्ली के चुनावों मे अरविन्द केजरीवाल का भी सफाया हो जाना चाहिए था, किन्तु लहर मोदी की नही है। लहर तो नेहरू परिवार से प्रधानमंत्री पद को मुक्त कराने की है। यह अलग बात है कि इस मुक्ति संग्राम मे कौन आगे आता है। नरेंन्द्र मोदी, अरविन्द केजरीवाल या कोई अन्य।

सोनिया जी पुत्र मोह मे पडकर जो कुछ कर रहीं है, वह राहुल गॉधी के लिए भी बहुत हानिकारक है। अब तक राहुल गॉधी ने जो मार्ग पकडा है, वह उनको स्थापित करने के लिए अन्य राजनेताओं की अपेक्षा बहुत अच्छा है। यदि राहुल गॉधी प्रधानमंत्री पद का लालच छोडकर कॉग्रेंस अध्यक्ष तक सीमित हो जाते तो उनकी प्रतिष्ठा बढ सकती थी, किन्तु ऐसा लगता है कि सोनिया जी के चक्कर मे पडकर राहुल गॉधी अपना भविष्य सदा के लिए बिगाड लेंगें। मेरे विचार मे किसी भले आदमी के लिए ऐसा परिणाम बहुत बुरा होगा किन्तु मैं इसमे कुछ नही कर सकता क्याकि राहुल गॉधी का भविष्य बनाना–बिगाडना सिर्फ और सिर्फ सोनिया जी के हाथ मे है। अगले चार महीने इस संबंध मे निर्णायक होने वालें हैं।

यह लेख ज्ञानतत्व अंक 252 दिनॉक 15–31,अगस्त 2012 मे छपा था, जो प्रसंगवश दुबारा दिया जा रहा है।

भारतीय लोकतंत्र के लिये सबसे बड़ा खतरा .....!

राहुल गांधी बड़ी जिम्मेदारी निभाने के लिए तैयार हो गये हैं। वे मान गए हैं कि बड़ी जिम्मेदारी उठाने के लिए उनके कंधे तैयार हैं। तब इस बात की पूरी संभावना है कि 2014 में होने वाले आम चुनावों में उन्हें प्रधानमंत्री पद के लिए प्रस्तुत किया जाएगा। अगर ऐसा होता है तो यह लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा होगा। वर्तमान समय में अगर कोई चीज लोकतंत्र की सबसे बड़ी शत्रु है तो वह है देश के प्रधानमंत्री पद का किसी एक परिवार के लिए आरक्षित हो जाना। राहुल गांधी को जिस तरह से झाड़ पोंछकर प्रधानमंत्री पद के लिए तैयार किया गया है उससे वे देश के लोकतंत्र के सबसे बड़े शत्र बन गये हैं।

आज के राजनीतिक वातावरण को देखते हुए लगता है, कि प्रधानमंत्री पद गांधी नेहरू परिवार की संपति हो गई है। जिस पर वे अपने ही परिवार के किसी सदस्य को देखना चाहते हैं। स्वतंत्रता के बाद से ही चली आ रही परिवारवाद की यह समस्या आज देश की सबसे बड़ी चुनौती बन गई है। गांधी परिवार में ऐसी कोई विशेषता नहीं है जिसके बिना इस देश का काम न चल सके। एक विकार की तरह कांग्रेस में यह विचार हमेशा प्रभावी रहा है कि योग्यता का मतलब होता है प्रधानमंत्री का पद और प्रधानमंत्री के पद का मतलब होता है नेहरू गांधी वंश परंपरा। यह विकार कितना विकराल हो गया है इसका उदाहरण सत्यव्रत चतुर्वेदी के उस बयान से भी पता चलता है जिसमें वे बड़ी बेशर्मी से कहते है कि प्रधानमंत्री पद की योग्यता अब नेहरू गांधी परिवार के रक्तबीज में समा गयी है।

कांग्रेस में परिवारवाद की यह समस्या आज से ही नहीं बल्कि स्वतंत्रता के बाद से ही चली आ रही है। जब नेहरू प्रधानमंत्री पद पर आसीन थे तो उन्होंने किसी दूसरे व्यक्ति को आगे बढ़ाने के बजाय अपनी बेटी इंदिरा गांधी को आगे बढ़ाया जबकि इंदिरा में उस समय कोई असामान्य खासियत नहीं थी। इंदिरा के बाद राजीव गांधी आए और उनके बाद सोनिया गांधी एक तरह से कांग्रेस सरकार में देश चला रही हैं। सोनिया के बाद राहुल को भी उसी पथ पर आगे बढ़ाया जा रहा है, जिस पर उनके परिवार वाले चले हैं। उनको प्रधानमंत्री बनने की शिक्षा बहुत पहले से दी जा रही है। अब उसका परिणाम देखने का समय आया है।

कांग्रेस नेतृत्व इस बात का भी पूरा ध्यान रखता है कि जब इस तरह का कोई निर्णय ले तो कोई विरोध का स्वर न उठे। इसके लिए वह पार्टी में ऐसे लोगों को संरक्षण देता है जो उनके फैसलों के पीछे हमेशा सिर हिलाये। कांग्रेस पार्टी उन्हें उंचा ओहदा देती है जिससे वे मुश्किल घड़ी में हमेशा उनका साथ देते हैं। नेहरू गांधी परिवार हमेशा अपने आसपास एक चौकड़ी निर्मित करके रखता है। समय समय पर यही चौकड़ी नेहरू गांधी परिवार की वंदना करके उनको प्रासंगिक बनाये रखती है। अब जिन पर कांग्रेस ने इतने एहसान किए हो वे उनके खिलाफ कैसे जा सकते हैं। नेहरू परिवार और ये उनके संरक्षण में पलने वाले लोग एक दूसरे के पूरक हैं। लेकिन यह प्रवृति कांग्रेस के आंतरिक लोकतंत्र के लिए भी घातक है। क्योंकि यदि राहुल प्रधानमंत्री बनते हैं तो कांग्रेस अध्यक्ष की कुर्सी कौन संभालेगा। यह सवाल बरकरार है। वैसे तो सोनिया जी हैं ही या यदि ज्यादा ही लोकतंत्र का ढोंग करना हुआ तो अभी से दिग्विजय सिंह, सलमान खुर्शीद, सत्य व्रत चतुर्वेदी सरीखे लोग लाइन लगने में खड़े हो चुके हैं।

गांधी नेहरू परिवार ने महात्मा गांधी के नाम का इस्तेमाल कर राजनीतिक सफलता तो अर्जित कर ली, लेकिन उन्होंने गांधी जी के विचारों को तिलांजलि दे दी। नेहरू परिवार ने समाज को रास्ता दिखाया, लेकिन उस रास्ते पर चलने से वे खुद कतराते रहे। उन्होंने गांधी के मरते ही उनके विचार को भी त्याग दिया। जब गोडसे ने गांधी को मारा तो भले ही उसका कर्म भी गलत था, और निर्णय भी लेकिन यही बात उसकी नीयत के बारे में नहीं कही जा सकती। क्योंकि उसके विचार दोषी हो सकते हैं लेकिन उसकी नीयत नहीं। नेहरू के बारे में यही बात थोड़ी उलटी है। उनके कर्म और निर्णय भले ही सही हो परन्तु नीयत पर सवाल उठना लाजमी है।

सवाल यह भी उठता है कि अगर राहुल इतने योग्य व्यक्ति हैं तो उन्हें कांग्रेस पार्टी का अध्यक्ष बना दिया जाए। यहां तक कि महात्मा गांधी की जगह बैठा दिया जाए तो कोई लोकतंत्र विरोधी बात नहीं होगो। लेकिन प्रधानमंत्री ही क्यों? क्या कांग्रेस की नजर में योग्यता का अर्थ प्रधानमंत्री की कुर्सी मात्र है? या गांधी नेहरू परिवार का अंतिम लक्ष्य ही प्रधानमंत्री की कुर्सी तक पहुंचना है? प्रधानमंत्री के पद पर अगर किसी एक ही परिवार के लोगों का कब्जा बना रहे तो लोकतंत्र का झुकाव राजशाही की ओर बढ़ता जाता है।

भारत जैसे लोकतंत्र के लिए यह बात भी खतरनाक है कि संविधान संशोधन का अधिकार संसद के पास है जिससे सरकार की तानाशाह बनने की आशंका हमेशा बनी रहती है। अगर सरकार कोई ऐसा संशोधन कर दे जिससे उसकी अवधि ज्यादा लंबी हो जाए तो लोकतंत्र को राजतंत्र बनने से रोक पाना मुश्किल होगा। इसकी थोड़ी सी झलक आपातकाल के दौरान जनता देख चुकी है। संविधान संशोधन के लिए एक अलग इकाई का होना अनिवार्य है, जिससे जनता की स्वतंत्रता को कोई खतरा न हो।

जो लोग मनमोहन सिंह की आलोचना करते हैं और उन्हें सिर्फ नेहरू गांधी परिवार के लिए उन्हीं की पसंद का प्रधानमंत्री बताते हैं वे लोकतंत्र से मजाक कर रहे हैं। मनमोहन सिंह की प्रशंसा की जानी चाहिए। इसलिए भी क्योंकि उन्होंने नेहरू गांधी परिवार की परिधि से प्रधानमंत्री पद को बाहर रखा और कांग्रेस का शासन होने के बाद भो। गैर नेहरू गांधी परिवार का होने के बावजूद प्रधानमंत्री के पद पर दो बार आसीन हुए, लेकिन इसके साथ ही मनमोहन सिंह की इस लिए भी तारीफ की जानी चाहिए कि उन्होंने नेहरू के उस समाजवादी आर्थिक ढांचे को भी ध्वस्त करने का काम किया जिसके सहारे नेहरू गांधी परिवार आर्थिक तरक्की का दंभ भरता रहा। नेहरू के इसी आर्थिक मॉडल के सहारे समाजवाद लाने और गरीबी हटाने की अनेक कोशिश की गई लेकिन वे इसमें कामयाब नहीं हुए।

ऐसा लगता है कि फल के परिपेक्ष्य को देखते हुए किसी षड़यंत्र के अर्न्तगत जिसमें सुषमा स्वराज सहित भाजपा का बड़ा वर्ग भी शामिल है, उन्हें आज बदनाम कर रहा है। अगर वास्तव में नेतृत्व में कमी है तो सोनिया गांधी की भी आलोचना होनी चाहिए। मनमोहन सिंह की नहीं। भष्टाचार को रोकने का सबसे सही तरीका है निजीकरण जिसका हमेशा मनमोहन सिंह ने पक्ष लिया है। वे ही 1991 के उदारीकरण के जनक भी माने जाते हैं। लेकिन लगता है उन्हें रास्ते से हटाने के लिए उनकी बदनामी की जा रही है। हो सकता है राहुल गांधी में बहुत सारे ऐसे गुण हो जिसका लाभ उनकी पार्टी को मिल सकता हो लेकिन प्रधानमंत्री पद के लिए उनको प्रस्तावित करना देश के लोकतंत्र के लिये खतरा पैदा करना है। अगर इस तरह प्रायोजित तरीके से राहुल गांधी प्रधानमंत्री पद पर आसीन कर दिये जायेंगे तो वे लोकतंत्र के सबसे बड़े शत्रु बन जायेंगे।

प्रश्न उठता है कि हम भारतीय मतदाता इस खतरे को टालने के लिये क्या कर सकते हैं? कांग्रेस पार्टी तो एक चौकडी की गुलामी है जिसे नेहरू गांधी परिवार हमेशा बनाता बिगाडता रहता है। भारतीय जनता पार्टी की संघ परिवार से मुक्ति हो नहीं सकती। विदित हो कि संघ परिवार की तो जन्मघुट्टी ही केन्द्रित शासन प्रणाली से शुरू हाती है। दलो के रूप में कोई दिखता नहीं। व्यक्तियों के रूप में चार व्यक्ति दिखते हैं जिनमें से कोई एक यदि आगे बढ़ाया जा सके तो इस खतरे से बचा जा सकता है। 1. मनमोहन सिंह 2. अरविन्द केजरीवाल 3. नीतिश कुमार 4. नरेन्द्र मोदी। यदि मनमोहन सिंह को दस प्रतिशत भी समर्थन बढ़ जावे तो सोनिया जी ऐसा खतरा न उठाकर मनमोहन सिंह पर ही दांव लगाने को मजबूर हो सकती हैं। यदि अरविन्द जी और नीतिश जी पर विचार करे तो अभी समय बाकी है। यदि नरेन्द्र मोदी पर विचार करें तो सर्वाधिक आसान और खतरनाक मार्ग है। नरेन्द्र मादी देश की सभी समस्याओं के समाधान के लिये तो सर्वाधिक उपयुक्त है किन्तु तानाशाही का भी उतना ही खतरा है। समस्याओ के त्वरित समाधान और तानाशाही का चोली दामन का संबंध होता है। यह तो अन्तिम विकल्प होना चाहिये। राहुल के मार्ग में कांटे बिछाने में

मनमोहन सिंह, नीतिश कुमार और अरविन्द केजरीवाल के बीच तो कुछ सहमति भी बन सकती है किन्तु नरेन्द्र मोदी से इतनी सूझबूझ पर संदेह हो है। अभी उत्तर प्रदेश के चुनाव में अमेठी और रायबरेली ने जिस तरह राहुल और उनके पारिवारिक घमंड को चकनाचूर किया वैसा ही चमत्कार पूरे भारत की जनता को चुनावों में कर के दिखाना चाहिये तभी भारतीय लोकतंत्र पर दिख रहे राहुल खतरे से मुक्ति संभव है।

प्रश्नोत्तर

1 शिवदत्त, बाघा–बॉदा उ.प्र.।

विचार :– नवम्बर की प्रथम पत्रिका मिली, आर्थिक विषय पर सार्थक चर्चा की गयी है, किन्तु ग्राम स्वराज की अपेक्षा कृषि पर कुछ कम चर्चा हुई है। आजादी के पूर्व खेती को देश की आर्थिक रीढ कहा जाता था जो एक सच्चाई भी थी। क्योंकि देश की आबादी का तीन चौथाई हिस्सा यानी 75 प्रतिशत आबादी गॉव और खेती से जुडी थी। कृषि उपज के मूल्य, बाजार की रफतार, श्रम मूल्य तथा वेतन आदि तय करने के आधार थे। अर्थ यह है कि देश की आर्थिक नीति का आधार कृषि उपज थी। आजादी के बाद गॉव और किसान यानी देश की यह 75 प्रतिशत आबादी वोट बैंक मे बदल गई जिसे काबू मे रखने के उपाय चाहिए थे। गॉवों की आबादी को गॉवो मे बनाए रखने के लिए यानी गॉवों से शहरों की ओर पलायन रोकने तथा गॉवों को उजाड से बचाने के लिए कृषि को उद्योग का दर्जा न देकर लैंड रिफार्म व सीलिंग की गाज गिराकर गॉवों के खाते–पीते परिवारों, दस्तकारों, व्यवसाइयों को मजदूरों की कतार मे खडा करने की योजनाऍ संचालित की गयी। इससे श्रम बेरोजगारी तथा श्रम मूल्य मे कमी जैसी समस्याओं का जन्म हुआ। शहरीकरण के कारण शहरों की समस्याऍ बढी, क्योंकि ग्रामीण आबादी काम की तलाश मे गॉवों की अपेक्षा, अधिक श्रम मूल्य पाने की गरज से शहरों की ओर पलायन करने लगे।

''उत्तम खेती मध्यम बान'' का नारा वोट बैक की भेंट चढ गया। गॉव और खेती सरकारी उपेक्षा के शिकार हो गये। समस्त ग्रामीण आबादी को रोटी मे उलझा कर उसे काबू मे रखने का, यह वोट राजनीति का ही हिस्सा है। आज की समस्त आर्थिक नीतियॉ वोट राजनीति के प्रभाव से अछूती नही है। राजनीतिक, आर्थिक सम्राज्य मे कुछ मुट्ठी भर खास लोगों या घरानों का दखल बना रहे इसी को ध्यान मे रखकर सारी आर्थिक नीतियॉ निर्धारित की जाती है। आम आदमी के लिए कोई भी शुभ का आर्शीवाद कभी भी नही दे सकता चाहे जितने बदलाव आए, क्रान्तियॉ हो और चाहे इस धरती मे कितने मार्क्स, गॉधी आए। सीधी सरल बातों को इतना पेचीदा बनाया जाता है, उलझाया जाता है कि सामान्य जन का कोई बात पल्ले न पडे और हर हाल मे राजनीति और आर्थिक साम्राज्य मे कुछ विशिष्ट जनो की पकड हमेशा–हमेशा के लिए बनी रहे। किताबों मे दर्ज सूत्रों सिद्धान्तों से अलग हटकर जमीनी सच्चाई पहचानने की जरूरत है।

उत्तरः–स्वतंत्रता के पूर्व भारत कृषि प्रधान देश था। उस समय भारत अन्न के मामले मे विदेशेां पर निर्भर था। कभी–कभी तो यहॉ के लोग भूखे पेट भी रह जाते थे। कृषि के अतिरिक्त अन्य औद्योगिक उत्पादन भी विदेशों से आयात किये जाते थे। इसका श्रेय पंडित नेहरू की अथनीति को जाता है कि उन्होने अन्न अथवा अन्य औद्योगिक उत्पादनों के आयात के साथ साथ उत्पादन बढाकर भारत को आत्मनिर्भर बनाया। यदि भारत स्वतंत्रता के पूर्व की ही अर्थनीति पर चलता रहता तो आयात के मामले मे भारत आत्मनिर्भर नही हो पाता। पंडित नेहरू की अर्थनीति ने देश को आत्मनिर्भर बनाया उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। किंतु जब आत्म निर्भर होने के बाद भी भारत ने अपनी नीतियों मे संशोधन नही किया तो उसके दुष्परिणाम आने लगे। कोई दवा बीमारी के समय खाई जाती है तो वह लाभदायक होती है, किन्तु बीमारी ठीक होने के बाद भी यदि वह दवा स्वाद के रूप मे खाना जारी रखा जाए तो उसके दुष्परिणाम भी होते हैं, और वही वर्तमान म हो रहा है। सस्ती कृत्रिम उर्जा उस समय आयात से निर्भरता कम करने के लिए आवश्यक थी, किन्तु अब वर्तमान समय मे वही सस्ती कृत्रिम उर्जा शोषण का हथियार बन गई है, यह ठीक नही है। कृषि को उद्योग का दर्जा दिया जाए यह भी एक उचित मॉग है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सकट से उबरने देने की जरूरत है इससे मै सहमत हूँ।

2 श्री कुलदीप कुमार– जनसत्ता 14 जुलाई 2013।

विचार :–जब राजनीति सामान्य ढंग से नही चल पाती या सत्तारूढ लोग उसे सामान्य ढंग से चलाने मे असमर्थ हो जातें हैं, तभी तानाशाही के लिए अनुकूल स्थितियॉ पैदा होती है।

हमारे देश मे इमरजेंसी के रूप मे एक छोटी–मोटी तानाशाही का प्रयोग किया जा चुका है। उन दिनो भी राजनीति असामान्य हो चली थी। एक ओर जयप्रकाश नारायण, सेना और पुलिस से सरकार के आदेश न मानने को कह रहे थे, तो दूसरी ओर इंदिरा गॉधी इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा चुनाव रद्द किये जाने के बाद भी प्रधानमंत्री की गद्दी पर बने रहना चाहती थी। आजकल की राजनीति, उसका स्वरूप और राजनीतिक नेताओं का आचरण देखकर आशका होती है, कि कहीं एक बार फिर देश उसी दिशा मे तो नही चल पडा है। इस बार खतरा न्यायिक तानाशाही का अधिक लग रहा है।

दिलचस्प बात है कि इस स्थिति के लिए न्यायपालिका कम, राजनेता अधिक जिम्मेदार है। पिछले तीन दशकों के दौरान उनमें यह प्रवृत्ति लगातार पनपती गई है, कि जिस समस्या से वे अपना पल्ला झाडना चाहते हैं उसे न्यायपालिका की देहरी पर रख आते हैं और फिर समाधान के लिए उसका मुँह ताकते रहते है। अगर न्यायपालिका को ही हर समस्या का समाधान करना है तो फिर जाने–माने वकील और कानून मंत्री कपिल सिब्बल की यह शिकायत उचित नही लगती कि न्यायपालिका अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण कर रही है। हकीकत यह है कि हमारे राजनीतिक वर्ग ने उसे यह अतिक्रमण करने के लिए लगातार प्रोत्साहन दिया है। इसी का नतीजा है कि न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका यानी संसद और सरकार तथा विधानसभा के बारे मे लगातार अमूल्य निर्णय देती रहती ह, और सख्त से सख्त टिप्पणी करने से गुरेज नही करती। वहीं वह अपने गिरेबान मे झॉकने को तैयार नही है। आत्मविश्लेषण और आत्मान्वेषण मे उसकी कोई रूचि नजर नही आती और अन्य सब से पारदर्शिता की मॉग करने के बावजूद वह अपने लिए पारदर्शिता जरूरी नही समझती।

यह स्थिति इसलिए पदा हुई है क्योंकि राजनीतिक वर्ग मे साहस, लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति निष्ठा और उनके लिए कुर्बानी देने की भावना का अभाव है। 1993 मे तात्कालिक प्रधानमंत्री पीवी नरसिम्हाराव की सलाह पर राष्ट्रपति ने बाबरी मस्जिद का विवाद सर्वोच्च न्यायालय के पास भेज दिया। न्यायालय की संविधान पीठ ने उस पर कोई फैसला देने स इंकार करके सही कदम उठाया। लेकिन सवाल है कि सरकार ने कोई राजनीतिक फैसला करने के बजाय न्यायालय की चौखट पर विवाद को छोड आने का फैसला क्यों किया? इसी तरह दिल्ली मे सीएनजी गैस को बस व अन्य वाहनों मे प्रयोग को सरकार अनिवार्य नही बना पाई, जबकि यह उसके अधिकार क्षेत्र का काम था। इसमे भी न्यायालय को हस्तक्षेप करना पडा, जिसके कारण सीएनजी के इस्तेमाल और उसके कारण प्रदूषण के स्तर मे कमी आने का श्रेय न्यायालय को दिया जाता है। यह इसी

देश मे संभव है कि सर्वोच्च न्यायालय ''हिन्दुत्व जैसी राजनीतिक अवधारणा पर भी अपना फैसला सुनाए और उसे जीवन जीने का तरीका मात्र बताकर उसकी वैचारिक वैधता पर मुहर लगा दे'' जैसा न्यायमूर्ति जे एस वर्मा ने किया था।

इस समय स्थिति यह है कि चाहे गुजरात सरकार हो या केंन्द्र सरकार, उन्हें सहो रास्ते पर रखने के लिए न्यायपालिका को हस्तक्षेप करना पडता है। भ्रष्टाचार के मामले हों या फर्जी मुठभेड क, सरकार और उसकी एजेंसियों द्वारा निष्पक्षता और तटस्थता के साथ जॉच कराने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को आगे आना पडता है। कदम–कदम पर उसे जॉच की प्रगति पर नजर रखनी होती है। सरकार से कहना पडता है कि वह सीबीआइ जैसी संस्था को जॉच करने की स्वतंत्रता दे। कार्यपालिका की इस विफलता का ही परिणाम है कि लोकतंत्र के विभिन्न स्तंभों के बीच जिस प्रकार का अन्योन्याश्रित संबंध और एक दूसरे पर अंकुश रखने की भावना होनी चाहिए, वह सिरे से गायब हैं। अब न्यायपालिका न केवल सरकार को दिशा निर्देश देती है कि वह अमुक–अमुक कदम उठाए, बल्कि वह संसद से भी कहती है, कि वह फलॉ कानून बनाए। न्यायिक सक्रियता का यह रूप लोकतंत्र के लिए शुभ संकेत नही है।

यह भी विचित्र बात है कि अगर उन एक–दो उदाहरणों को छोंड दें, जब देश के किसी प्रधान न्यायाधीश ने अदालतों के कामकाज और उनक भ्रष्टाचार पर आलोचनात्मक टिप्पणी की, तो हम पायेंगें कि न्यायपालिका की आत्मविश्लेषण मे कोई खास रूचि नही है। निचली अदालतों मे आवाज लगाने पाले चपरासो से लेकर पेशकार तक खुलेआम घूस लेतें हैं। कदम–कदम पर वहॉ पैसे खिलाने पडतें हैं। लेकिन भ्रष्टाचार को दूर करने मे न्यायपालिका ने कोई विशेष तत्परता नही दिखाई। उच्च न्यायालयों के गलियारों तक मे भ्रष्टाचार का प्रवेश हो चुका है। उसे मिटाने के लिए कौन पहल करेगा?

न्यायपालिका के निर्देश पर चुनाव लडने वाले उम्मीदवारों के लिए अपनी संम्पति की घोषणा करना अनिवार्य हो गया है। यह निश्चय ही बहुत अच्छी बात है, लेकिन खुद न्यायाधीश अपनी संम्पति की घोषणा नही करना चाहते। अगर किसी ने की भी है तो स्वेच्छा से। ऐसा करना अनिवार्य नही है। जजों की नियुक्तियों मे भी पारदर्शिता नही है और जजों की सदस्यता वाला चयनमंडल ही इस विषय मे सारे फैसले करता है। लेकिन ये फैसले भी विवाद से परे नही है।

सर्वोच्च न्यायालय के दो सदस्यों ने पॉच सदस्यीय संविधान पीठ के एक निर्णय को उलट कर यह फैसला सुनाया है कि अगर कोई व्यक्ति किसी कारण जेल मे है, ता वह चुनाव नही लड सकता। साथ ही अगर किसी विधायक या सांसद को अदालत ने सजा सुना दी है, तो तत्काल प्रभाव से सदन की उसकी सदस्यता समाप्त हो जाएगी। हालांकि प्रख्यात विधिवेता सोली सोराब ने इस फैसले का स्वागत किया है, लेकिन अधिकतर लोग इसके कारण सकते मे है।

अगर यह व्यवस्था 1977 मे लागू होती तो जाज फर्नाडीज जेल से चुनाव नही लड सकते थे। हमारी पुलिस किस तरह लोगो को झूठे–सच्चे आरोप लगाकर जेल की सलाखों के पीछे धकेल देती है, वह किसी से छिपा नही है। शॉतिपूर्ण प्रर्दशन कर रहें लोगो को भी गिरफ्तार करके उन पर सार्वजनिक संम्पति को नुकसान पहॅचाने, सरकारी कर्मचारियों को कर्तव्य पालन से राकने और उन पर हिंसक हमले करने जैसे आरोप लगाकर रपट लिखना पुलिस का रोजमर्रा का काम है। प्रभावशाली नेता अपने प्रतिद्वंदियों को चुनाव से पहले जेल भिजवाने का काम आसानी से अंजाम दे सकतें हैं, फिर तो उनके लिए मैदान साफ हो जाएगा।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से किसी भी उम्मीदवार को चुनाव लडने के लिए अयोग्य बना देना बहुत आसान हो जाएगा। अपराधिक रिकार्ड वाले नेताओं का विधानसभा और संसद मे प्रवेश अवश्य कठिन हो जाएगा, लेकिन समाप्त नही होगा। अगर न्यायालय इस बात की भी व्यवस्था करे कि इस प्रकार के मामलो का त्वरित निपटारा होगा और विशेष अदालतें इस काम को करेंगी, तब फिर भी शायद कुछ उम्मीद बंधें। लेकिन ऐसा होगा कैसे? जब अदालतों मे हजारों पद रिक्त पडें हैं और नई नियुक्तियॉ को ही नही जा रही है। सर्वोच्च न्यायालय का फैसला मर्ज के साथ–साथ मरीज को भी मारने जैसा है। अब भी समय है जब राजनीतिक वर्ग चेते और अपनी जिम्मेंदारियों को निभाने के लिए आगे आए। लोकतंत्र को लोकतंत्र की तरह चलाने मे रूचि लें और संकीर्ण स्वाथो से निजात पाए। वरना न्यायिक सक्रियता देश को किसी खतरनाक मोड पर ले जाकर छोड सकती है। पाकिस्तान के पिछले कुछ सालों के अनुभव से हमे कुछ सबक लेना चाहिए।

उत्तरः– आपने बहुत ही संतुलित और सुलझा हुआ लेख लिखा है। न्यायपालिका, विधायिका के मामलों मे लगातार हस्तक्षेप कर रही है, बल्कि मेरा तो यह मानना है कि वह सारी सीमाएॅ तोडकर हस्तक्षेप कर रही है। फिर भी विधायिका ने जन विश्वास खो दिया है। विधायिका द्वारा लोकतंत्र के मूलस्वरूप को लगातार अपने पक्ष मे झुकाने की कोशिश की गई। यह कोशिश संविधान बनाते समय ही शुरू हो गइ थी। तभी तो विधायिका के लोगो ने संविधान मे एकपक्षीय व्यवस्था कर दी थी कि संविधान का पालन तो विधायिका ही करवाएगी, कानून भी वही बनाएगी, तथा संविधान मे संशोधन भी वही करेगें। इसका अर्थ यह हुआ कि संविधान बनाते समय ही राजनेताओं की नोयत खराब थी। पंडित नेहरू जिनका, विधायिका के लोग बहुत गुणगाण करते हैं, उन्होने बुलडोजरी अंदाज मे न्यायपालिका के कानूनों की समीक्षा करने के अधिकारों मे भी कटौती कर दी, और एक नवी अनुसूचि बना दी, जिससे न्यायपालिका कमजोर हो जाए। पंडित नेहरू से लेकर इंदिरा जी तक ने राष्ट्रपति के अधिकारों मे कटौती करने के प्रयत्न किये। मजबूर होकर न्यायपालिका ने कुछ कदम उठाये जो असैवधानिक भी हो सकतें हैं या गैरकानूनी भी हो सकतें हैं, किन्तु ऐसे कदमो की आवश्यकता बहुत थी। न्यायालय मे प्रस्तुत होने वाली जनहित याचिकाएॅ हों या कशवानंद भारती केश मे एक न्यायाधोश के बहुमत से दिया गया फैसला हो अथवा नवीं अनुसूचो की समीक्षा के अधिकार हों। सबकी वैधानिकता संदिग्ध होते हुए भी आवश्यकता से इन्कार नही किया जा सकता। मै मानता हूॅ कि न्यायपालिका अनेक मामलो मे विधायिका के कार्यों मे अनावश्यक हस्तक्षेप कर रही है और ऐसे हस्तक्षेप घातक भी हो सकतें है, किन्तु मै नही मानता कि दागियों के चुनाव लडने पर रोक अथवा सजा प्राप्तों की सदस्यता से बर्खास्तगी कोई गलत कदम है। सजा प्राप्त लोगों की बर्खास्तगी पर विधायिका ने अपने कदम वापस खींच लिए हैं तथा जेल मे बंद लेागो के चुनाव लडने पर रोक संबंधी आदेश पर न्यायपालिका ने कदम वापस खींचें हैं, किन्तु मेरे विचार मे यदि जेल मे बंद लोगो को भी हल्का सा संशोधन करके चुनाव लडने से रोक दिया जाता तो कोई गलत कार्य नही होता। चुनाव लडना किसी व्यक्ति का मौलिक अधिकार नही है। कोई भी व्यक्ति स्वयं चुनाव लडने के लिए स्वतंत्र नही होता बल्कि अन्य लोग उसका नाम प्रस्तावित करतें हैं, तब वह अपनी सहमति मात्र देता है। इसलिए न्यायालय के इस आदेश से कुछ दिक्कते तो आएगीं, जिसे कुछ संशोधन द्वारा सुधारा जा सकता है। यदि जार्ज फर्नाडिज चुनाव नही लड पाते तो देश का क्या बिगड जाता? उनके समक्ष देश सेवा के इससे भी ज्यादा अच्छे अवसर तो मौजूद रहते और यदि ऐसी विसंगति आमतौर पर आती तो इसका हल निकालना कठिन नही होता। लेकिन दागी नेताओं से

पिण्ड छुडाना अधिक कठिन हो रहा है, फिर भी यदि न्यायपालिका और विधायिका का टकराव टल गया तो अच्छा हुआ। न्यायपालिका को मेरी सलाह है कि विधायिका के कार्यों मे अनावश्यक हस्तक्षेप न करके बहुत सोच समझकर ही हस्तक्षेप करे तो विधायिका को न्यायपालिका के खिलाफ वातावरण बनाने का अवसर नही मिलेगा।

3 नरेन्द्र सिंह कछवाहा–संयोजक (जिला–लोक स्वराज मंच) राजसमंद, राजस्थान।

विचार :–नोएडा मे दिनॉक 30–31 अगस्त 2013 को ''लोकसंसद स्थापना'' और उसके लिए लोकसंसद यात्रा पन्द्रह अगस्त से 14 अक्टूबर 2014, तक आयोजित करने पर चर्चा और सहमति हुई। यह देश की आम जनता की भावनाओं के निष्कर्ष के तौर पर एक महत्वपूर्ण निर्णय और चर्चा था। इसकी क्रियान्विति एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक पक्ष है जो हमारे मिशन की सफलता के लिए अति आवश्यक है। इसी दृष्टि से मै अपने विचार इस पत्र के माध्यम से प्रेषित कर रहा हूँ। आशा है ध्यान देगें।

मरा अनुरोध है कि ''लोकसंसद स्थापना'' और लोकसंसद यात्रा को देश की आमजनता की मॉग के तौर पर प्रस्तुत करें। हम उस मॉग के वाहक के तौर पर कार्य करें। इस यात्रा के दौरान हमारा प्रयास हो कि आमजनता की वर्तमान धारणा जो कि भ्रष्ट और कुशासन की व्यवस्था के विरूद्ध है, उस पर बल देते हुए उसका समर्थन करके, लोकसंसद को एक उपाय के तौर पर सार्वजनिक करें। इस यात्रा के दौरान भले ही हमारे विचार से डॉ. मनमोहन सिंह एक अच्छे लोकतंत्र के समर्थक प्रधानमंत्री रहें हो, लेकिन उनका समर्थन करने से बचें, क्योंकि आम जनता वर्तमान कुशासन व भ्रष्ट शासन के लिए सोनिया गॉधी के इरादों और विचारों की क्रियान्विति के लिए डॉ. मनमोहन सिंह को अधिक जिम्मेवार मानती है। यह ठीक हो सकता है कि प्रधानमंत्री को लोकतंत्रीय व्यवस्था मे कमजोर होना चाहिए। किन्तु इतना भी अक्षम नही होना चाहिए, कि शासन मे जिसकी जैसी मर्जी हो करता रहे और आम जनता त्राहिमाम– त्राहिमाम करती रहे। अतः लोकसंसद यात्रा के दौरान आम जनता की भावनाओं के प्रतिकुल विचारों की अभिव्यक्ति से बचना, इसकी सफलता के लिए व्यावहारिक तौर पर अधिक उचित होगा, ऐसी मेरी मान्यता है। अतः आम जनता की दृष्टि से विवादित मुद्दों को इस यात्रा के दौरान नही छेडना ही उचित होगा।

जैसा कि मैने अपना सुझाव रखा था कि हमे लोकसंसद यात्रा को बंद कमरे की बैठक के बजाय सार्वजनिक सभा मे विचार प्रसारण पर अधिक बल देना चाहिए, क्योंकि यह आम जनता की मॉग है। इसे अधिक से अधिक आम जनता तक पहचा कर उसकी मॉग को मुखर करके, सरकार और उसके संचालक राजनेताओं तथा राजनैतिक दलों पर दबाव बनाने की आवश्यकता है।

मरा विचार है कि यात्रा से पूर्व वातावरण बनाने के लिए एक छोटा सा हैंडबिल–पेम्पलेट सार्वजनिक सभा मे लोकसंसद की स्थापना के लिए, आम जनता को आमन्त्रित करने के लिए, जहॉ–जहॉ सार्वजनिक सभा होती है, वहॉ वितरण के लिए छपवाकर पूर्व मे भेजे जाएँ, जो व्यवस्था परिवर्तन मंच तथा लोकस्वराज्य मंच की ओर से प्रकाशित किया जाये। इस पेम्पलेट वितरण से आम जनता तक व्यवस्था परिवर्तन मंच, लोक स्वराज्य तथा लोकसंसद का मेसेज या विचार पहचेगा, जो उसकी भावनाओं के अनुकुल होगा। आपके स्तर पर इन तीन मुद्दों यथा–व्यवस्था परिवर्तन, लोकस्वराज्य तथा लोकसंसद की स्थापना को आम जनता के समक्ष इसके वैचारिक पक्ष तथा व्यवहारिक पक्ष को पूर्ण परिपक्वता के साथ प्रस्तुत करना होगा। जिससे कि जन चेतना इन मुद्दों के प्रति जागृत हो। इसके साथ ही आपके स्तर पर इन तीनों मुद्दों की विस्तृत व्याख्या के साथ सुस्पष्ट करते हुए, एक दो पृष्ठ का बडा पेम्पलेट व्यवस्था परिवर्तन मंच तथा लोकस्वराज्य मंच की ओर से प्रकाशित होकर, सार्वजनिक सभा मे वितरण किया जाए, जो कि लोकसंसद यात्रा की ओर से आम जनता को संदेश स्वरूप होगा। इस पेम्पलेट से लोकसंसद के विचार आम जनता मे स्थापित होकर इसकी मॉग का दबाव बनेगा, जो हमारे मिशन को आमजनता के समर्थन व सहयोग की दृष्टि से अधिक प्रभावित होगा।

उत्तरः–आपने बहुत गंभीरता से सुझाव दियें हैं। आपके सुझावों को अवश्य ही ध्यान मे रखा जाएगा। लोक संसद को मॉग के रूप मे प्रचारित करना अधिक उचित होगा, अथवा आवश्यकता के रूप मे इस पर और अधिक विचार करने की जरूरत है। बिना अच्छी तरह विचार किये तथा बिना अच्छी तैयारी के यात्रा नही शुरू करेगें भले ही कुछ विलंब क्यों ना हो जाए। लोक संसद की चर्चा मे किसी व्यक्ति विशेष अथवा राजनैतिक दल की चर्चा नही होगी। चर्चा संविधान पर ज्यादा टिकी रहेगी और समाधान पर, किन्तु सभी वक्ता लोकसंसद के अतिरिक्त मुद्दों पर उठे प्रश्नो पर उत्तर आयोजकों की अनुमति से ही दे सकतें हैं, स्वतंत्र रूप से नही। ऐसे व्यक्तिगत प्रश्नो पर अलग–अलग वक्ता अलग–अलग प्रकार के उत्तर भी दे सकतें हैं। यदि मुझसे मनमोहन सिंह के संबंध मे कोई प्रश्न किया गया तो, मैं उसे विषय से हटकर किया गया प्रश्न कहकर टाल सकता हूँ, किन्तु यदि आयोजक ने उत्तर देने की जिद की तो मैं असत्य नही बोलूंगा। मै एक वानप्रस्थी हूँ, तथा मुझे असत्य बोलने से बचना चाहिए। वर्तमान राजनैतिक परिस्थितियों मे यदि मै भी प्रधानमंत्री होता तो मै तो थोडे दिनो तक भी नही चला पाता। पता नही मनमोहन सिंह ने किस तरह इतने दिनो तक चला लिया। यूपीए–दो बनने के बाद सोनिया जी लगातार प्रयत्न करतीं रही कि मनमोहन सिंह किसी तरह स्वयं ही अपने को असफल सिद्ध घोषित करके त्याग पत्र दे दें, जिससे राहुल गॉधी का रास्ता साफ हो सके। पूरा विपक्ष अलग से चाहता था कि मनमोहन सिंह सरीखा प्रधानमंत्री संम्पूण राजनैतिक व्यवस्था को कमजोर कर उनकी जड खोद रहा है। वह किसी भी तरह हटे, चाहे उसकी जगह कोई भी अन्य क्यों ना आ जाए। क्या मेरे लिए ऐसे उचित होगा कि मै तात्कालिक लाभ अथवा प्रशंसा के लिए ऐसे षडयंत्र का समर्थन करूं? यदि जनसमर्थन की बात होती और वोट लेना होता तो मै भी केजरीवाल जी की तरह मॅहगाई, भ्रष्टाचार, कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि, शिक्षा, महिला उत्पीडन, आदिवासी, हरिजन जैसे अनेक मुददों को उछालकर जनसमर्थन प्राप्त कर सकता था, किन्तु मुझ वोट लेने की अपेक्षा उचित और कठिन मार्ग पर चलना अधिक पसंद आया। इसलिए ही मैने यह मार्ग चुना है। फिर भी लोकसंसद का ऑदोलन और वोटों की राजनीति मे कुछ ना कुछ संबंध रहेगाा ही, इसलिए मै इस ऑदोलन मे चर्चा करते समय अपने व्यक्तिगत विचारों से परहेज करूगा। इसका यह मतलब नही है कि मैं वहॉ वोटों के लिए कुछ असत्य बोलूंगा। इतना ही संभव है कि मै ऐसी बात बोलने से परहेज करूँ जो लोकसंसद ऑदोलन के आयोजकों की आवश्यकता के विपरीत जाती हो। आप खुद विचार करिए कि यदि मनमोहन सिंह जनमत की आवाज सुनकर त्यागपत्र दे दिये होते ता त्यागपत्र की इच्छा रखने वालों का उद्देश्य तो पूरा हो जाता, कोई मजबूत व्यक्ति प्रधानमंत्री भी बन जाता, किन्तु समाज का क्या भला हो जाता? क्या न्यायपालिका मजबूत हा जाती? अथवा भ्रष्टाचार रूक जाते? मेरे विचार से मनमोहन सिंह ने समाज के लिए अपनी छवि का बलिदान कर दिया है और कोई चाहे उनकी प्रशंसा करे या ना करे मै तो करूँगा ही।

यात्रा के कार्यक्रम बंद कमरे मे हो अथवा आमसभा के रूप मे यह स्थानीय आयोजक की क्षमता पर निर्भर करेगा, वक्ता पर नही , फिर भी और कोशिश करेंगें कि अधिक से अधिक आम सभाएँ हो सके। यात्रा के पूर्व यात्रा के स्थानो पर संम्पर्क के लिए कोई जा सकता है अथवा पूर्व मे ही कहीं सामूहिक रूप से बैठकर ऐसी चर्चा हो सकती है।

कार्यालयीन प्रश्नोत्तर

प्रश्नः— आप कई बार ज्ञानतत्व मे लिखते हैं कि सर्वोदय नेतृत्व साम्यवादियों के प्रभाव मे है, तथा साम्यवादियों के निर्देशानुसार नीतियॉ और कार्यक्रम बनाता है, जबकि सर्वोदय नेतृत्व इसका हमेशा ही खंडन करता है। आप सर्वोदय के कार्यक्रमों मे ऐसा क्या देखतें हैं जो साम्यवादियों से निकटता महसूस कराती है।

उत्तरः— साम्यवाद केन्द्रियकरण का पक्षधर है और अकेन्द्रिकरण या विकेन्द्रिकरण विराधी। साम्यवाद हिंसा का समर्थन करता है यहॉ तक कि अपने उद्देश्यों की पूति के लिए किसी भी प्रकार की हिंसा से परहेज नही करता। साम्यवाद अमेरिका की हर नीति का ऑख मूँदकर विरोध करता है। साम्यवाद वर्ग संघर्ष का प्रमुख समर्थक माना जाता है। सर्वोदय के सामान्य कार्यकर्ता अपने स्वाभाविक आचरण मे साम्यवाद की उपरोक्त सभी नीतियों को न सिर्फ अस्वीकार करतें हैं बल्कि विरोध भी करते हैं किन्तु सर्वोदय का उच्च नेतृत्व अपनी नीतियों तथा कार्यक्रमों मे साम्यवाद की उपरोक्त सभी नीतियों का पूरा—पूरा पालन करतें है। सवादय ने साम्यवादियों के प्रभाव मे पडकर लोक स्वराज के लिए संघर्ष को छोड दिया तथा ग्राम स्वराज्य का अर्थ ग्राम—सुधार तक सीमित कर दिया। सर्वोदय ने कभी भी वर्ग संघर्ष का विरोध करके वर्ग समन्वय की कोई बात नही की। सबसे बडी बात यह हुई कि सर्वोदय ने बिजली उत्पादन की किसी भी प्रकार की योजना का किसी ना किसी बहाने विरोध किया। साम्यवाद का उद्देश्य था बिजली उत्पादन मे अडंगे डालकर डीजल, पेट्रोल की खपत को बढने दिया जाए, जो साम्यवादियों के हितैषी खाडी देशेां की एक खास आवश्यकता थी। मनमोहन सिंह सरकार जब बिजली उत्पादन बढाने के लिए परमाणु उर्जा संयंत्रो का अमेरिका से आयात करना चाहती थी, तब उस आयात का साम्यवादियों ने खुला विरोध किया, किन्तु सब होते हुए भी जब मनमोहन सिंह सरकार के खिलाफ धरना देने की बारी आइ, तो धरना देने मे सर्वोदय नेतृत्व सबसे आगे रहा। एसा लगा जैसे कि सर्वोदय के लिए आज भारत की यह सबसे बडी समस्या है। नक्सलवादी पूरे देश मे हिंसा का वातावरण फैला रहें है। देश के अनेक प्रबुद्ध विचारक नक्सलवाद को हिंसक सत्ता संघर्ष के रूप मे देख रहें हैं, किन्तु सर्वोदय के लोगो की नक्सलवाद या नक्सलवादियों के प्रति अप्रत्यक्ष सहानुभूति रहती है।

अमेरिका विरोध के हर अवसर पर सर्वोदय हमेशा ही आगे—आगे रहता है। चीन और रूस मे मानवाधिकार का कितना उल्लखंन हुआ है, इसकी चर्चा कभी सर्वोदय नही करता, किन्तु अमेरिका के मामले मे चाहे उचित हो या अनुचित सर्वोदय सबसे आगे रहता है। सर्वोदय को राजनीति से पूरा परहेज है। चुनाव मे प्रायः वोट भी नही देते हैं किन्तु गुजरात के चुनाव मे बिलकुल आगे जाकर भाजपा का विरोध करतें हैं। इतना आगे जाकर कि उससे लगता है कि जैसे वह चुनाव सर्वोदय ही लड रहा है।

बंगाल मे होने वाले सर्वोदय कायकर्तोओं के अधिवेशन मे मैं भी मौजूद था। वहॉ राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त सर्वोदय कार्यकर्ता, फतेहपुर के रामभूषण जी ने एक प्रश्न उठाया, कि सारे देश मे साइकिल जैसी मूल आवश्यकता की वस्तु पर करीब 400 रूपये कर लगता है, और रसोई गैस जैसी सुविधा की वस्तु पर उतनी ही छूट दी जाती है। सारे देश मे डीजल की खपत पर छूट दी जाती है, और ग्रामीण उत्पादन पर भारी टैक्स लगतें है। वातावरण को गंदा करतें हैं— शहर वाले, स्कूटर वाले, या ट्रक वाले और वातावरण को साफ करने के लिए अपनी जमीन पर पैदा किये गये पेडों पर भी टैक्स लगता है। लगता है कि निम्न वर्ग की कीमत पर मध्यम वर्ग की सविधाओं का ध्यान रखा जाता है। इस मुद्दे पर भी चर्चा होनी चाहिए। अमरनाथ भाई स्वयं अध्यक्षता कर रहे थे, किन्तु उनके सामने ही कुमार प्रशांत जी ने रामभूषण जी को कसके डॉटा और कहा कि आप बैठ जाइए ऐसी बातें करने का इसलिए उद्देश्य नही है कि ये बातें आपकी अपनी नही है बल्कि किसी अन्य से सुनी हुई है। मैं नही समझता कि ऐसे मुद्दों पर इतने जोर से डॉटकर बिठाने की क्या आवश्यकता थी। अमरनाथ भाई बिलकुल चुप रहे, स्पष्ट है कि इस डॉट के पीछे भी साम्यवादी विचारों का प्रभाव था।

सर्वोदय मे अन्य संगठनो की अपेक्षा त्यागी, तपस्वी और ईमानदार लोगों की बहुलता है। सब जानते हैं कि सर्वोदय हिंसा का विरोधी है। सब यह भी जानतें हैं कि सर्वोदय के लोगो का दोहरा आचरण नही है बल्कि वे हद से ज्यादा शरीफ माने जाते है। दूसरी ओर सब यह भी जानतें हैं कि संघ परिवार या साम्यवादी दुहरा आचरण जीतें हैं, हिंसा के समर्थक हैं। सर्वोदय के पास भारत मे कम से कम गॉधी का एक ऐसा नाम है जो स्वयं पूरे देश के जनमानस मे आजतक स्थापित है। संघ परिवार तथा साम्यवादियों के पास ऐसा कोई नाम नही है, इसके बाद भी पूरे देश मे हिंसा के प्रति विश्वास क्यों बढ रहा है? यह किसकी नीतियों की असफलता है, गॉधी की नीतियों की अथवा सर्वोदय की नीतियों की। गुजरात जैसे प्रदेश मे लगातार हिंसा बढ रही है इसका कारण क्या है? मेरे विचार से इसका कारण है कि सर्वोदय गॉधी के नाम के प्रचार मे लगातार लगा रहा। संघ और अमेरिका विरोध मे अपनी सारी ताकत झोंकता रहा किन्तु कभी उसने गॉधी की नीतियों की चिंता नही की।

पूरे देश मे सॉम्प्रदायिकता क्यों बढ रही है इसका उत्तर कौन देगा? संघ परिवार और मुसलमान दो ध्रुव बनकर सॉम्प्रदायिक आधार पर ध्रवीकरण करा रहें हैं और सर्वोदय इस ध्रुवीकरण मे मुसलमानो के पीछे खडा है। स्पष्ट दिखता है कि साम्यवादियों ने गॉधी हत्या के बाद सर्वोदय मे छद्म नाम ,छद्म रूप मे प्रवेश किया और लगातार सर्वोदय को संघ और अमरिका विरोध मे उकसाते रहे। आज भी ऐसा दिखता है कि सर्वोदय की सर्वोच्च प्राथमिकता संघ का विरोध और अमेरिका का विरोध है और यदि भारत का प्रधानमंत्री भी किसी मुद्दे पर अमेरिका के साथ खडा दिखे तो सर्वोदय सबसे आगे बढकर भारत के उस प्रधानमंत्री का भी विरोध करेगा। सर्वोदय के इन कार्यक्रमों की समीक्षा करने के बाद यदि मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि सर्वोदय क लोगो को साम्यवादियों की ओर से धोखा दिया जा रहा है तो इसमे गलत क्या है?

खबरें इस पखवाडे की :—

पिछले 15 दिनो मे कई घटनाएँ हुई है। पहलो घटना यह सामने आई कि रूस के एक शहर मे रेलवे स्टेशन के बाहर कुछ बक्से चार—पॉच महीने से रखें हैं, जो यद्यपि बंद हैं किन्तु जॉच करने पर पता चला कि उनमे भारतीय मुद्रा के अनुसार 16 खरब 22 करोड रूपया रखा हुआ है। रूपयों का मालिक इन्हें लेने नही आ रहा ह और ना ही लेने की अनुमति दे रहा है। इतने महीने बीतने के बाद भी सरकार इन रूपयों को ना जब्त कर रही है ना कोई खोजबोन कर रही है। आश्चर्य है कि 16 खरब 22 करोड रूपया इस तरह लावारिस पडा है। वैसे माना जा रहा है कि यह रूपया

संभवतः सद्दाम हुसैन का रहा होगा, किन्तु विचारणीय प्रश्न यह भी है कि 16 खरब 22 करोड रूपया सद्दाम हुसैन ने इकट्ठा कैसे किया, और क्यों किया ? और यदि उसने इकट्ठा किया तो तानाशाहों के उपर गंभीर उॅगली उठती है। मैं जानता हूॅ कि प्रत्येक नेता जनहित के नाम पर तानाशाह बनना चाहतें हैं, सरदार पटेल मे तो यह गंध थी ही, पंडित नेहरू भो इससे अछूते नही थे, और इंदिरा जी ने तो प्रयोग करके देख लिया। रोमानिया के कम्यूनिष्ट शाषक के महल का इतिहास भी कोई गुप्त नही है। नक्सलवादी नेपाल प्रमुख प्रचण्ड का भी यदि भेद खुलेगा तो ऐसी ही बातें सामने आएगी। रूस मे पडे इस रूपये ने यह सोचने को विवश कर दिया है कि सीमा से अधिक इकट्ठा किया गया धन काम नही आता है, और विवाद का भी कारण बनता है। रूस सरकार को चाहिए कि खोजबोन करके यह पता लगावे कि यह रूपया कहॉ से आया, किसने भेजा और रूस मे ही क्यों भेजा? 16 खरब 22 करोड रूपयें कि बात इतनी मामूली नही है कि जिसमें मामूली तौर पर विचार किया जाए।

पिछले दिनो सुप्रीम कोर्ट ने अपनी ओर से पहल करते हुए, यह आदेश दिया है कि गंभीर मामलो मे थाने मे रिपोर्ट होते ही उसकी एफ आई आर लिखी जाए, और उसकी जॉच को कोई प्रतीक्षा ना की जाए। एफ आई आर का मतलब होता है जुर्म कायम करना, अर्थात जिनके विरूद्ध एफ आई आर हुआ है, उसके विरूद्ध पहले कार्यवाही करना और तब जॉच करना। सुनने मे यह बात बहुत ही न्यायसंगत लगती है। सुप्रीम कोर्ट ने अपने आदेश के पक्ष मे कुछ उदाहरण भी दियें हैं कि हत्या, बलात्कार, डकैती जैसे गंभीर मामलो की एफ आई आर की छूट पुलिस को नही दी जा सकती। सुप्रीम कोर्ट का यह आदेश तो ठीक दिखता है, किन्तु सुप्रीम कोर्ट के इस आदेश का एक भयानक तथ्य यह भी दिखता है कि तीन वर्ष से अधिक की सजा संभव है उन्हें गभीर अपराध माना जाएगा। सुप्रीम कोर्ट ने अपना पक्ष रखते हुए हत्या, बलात्कार, डकैती जैसे उदाहरण तो रख दिये किन्तु यह नही रखा कि भ्रष्टाचार, आदिवासी, हरिजन उत्पीडन, महिला उत्पीडन जैसे अनेक अपराध जिनमे तीन वर्ष से अधिक की सजा संभव है, वे सब भी इसी श्रेणी मे आ जाऍगें। सुप्रीम कोर्ट को यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए थी कि आदिवासी एक्ट के अंर्तगत जो मुकदमें प्रस्तुत होते है, उनमे 90 प्रतिशत झूठे या परेशान करने के लिए कियें जातें हैं। यदि दहेज या बलात्कार के मामलों का भी ठीक से सर्वेक्षण किया जाए तो करीब–करीब यही बात सामने आती है। अब इसका परिमाण खुद सुप्रीमकोर्ट के पास है कि न्यायालयों मे ऐसे अपराधों मे कितने प्रतिशत सजा होती है। यदि सुप्रीमकोर्ट समझता है कि दोषी व्यक्ति भी न्यायालयों से किसी तरह से चालाकी से निर्दोष सिद्ध हो जाते हैं तो ऐसी बचकाना बात कोइ राह चलता व्यक्ति भले ही कर दे, लेकिन न्यायालय सरीखे जिम्मेवार इकाइ ऐसा नही कह सकती। समाज मे भी प्रत्यक्षतः ऐसा ही दिखता है कि धूर्त लोग ऐसे कानूनों का सहारा ब्लैकमेल करने के लिए करने लगे हैं, तथा इस आदेश के बाद जितने प्रतिशत शरीफ लोगों को राहत मिलेगी, उससे कई गुणा ज्यादा धूर्त लोगों की धूर्तता की जाएगी। दहेज कानून, मकान किराया कानून जैसे बिना सोचे समझे बनाए गये, ऐसे कानून इसके उदाहरण है, जिसकी पुनविचार की आवश्यकता पड रही है।

पिछले दिनो भारत के गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे ने एक विलक्षण आदेश प्रसारित किया, जिसके अनुसार देशभर मे निर्दोष अल्पसंख्यको की गिरफतारी के पूर्व सतकता रखने की बात कही गई। राजनैतिक दृष्टि से तो यह आदेश ठीक है , क्योंकि कॉग्रेस पार्टी के लिए अल्पसंख्यक ही वोट बैंक है, किन्तु धर्मनिरपेक्ष भारत मे इस प्रकार का आदेश समझ के बाहर है। इसी भूमिका के अंतगत प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी पिछले वर्ष कहा था कि देश के संसाधनों पर अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानो का पहला अधिकार है। यदि कॉगेस पार्टी ऐसा कहे तो वह अलग बात हो सकती है किन्तु किसी देश का प्रधानमंत्री या गृहमंत्री कहे तो ऐसा कहना कोई साधारण गलती नही है। कल को यदि मोदी प्रधानमंत्री हो जाए, और ऐसी ही बातें वाटों की लालच मे हिन्दुओं के पक्ष मे कहना शरू कर दे तो धर्मनिरपेक्ष का क्या अर्थ रह जाएगा। हम खुलेआम पाकिस्तान की आलोचना करतें है कि वहॉ हिन्दुओं को दूसरे दर्जे का नागरिक माना जाता है। भारत मे यह कैसे उचित है कि दोषी या निर्दोष होने का आधार कोई धर्म या जाति हो सकती है। मुझे पता है कि ऐसी गलत बातें कहने के बाद भी भारत के धर्मनिरपेक्ष लोंगों की ओर से न कोइ गंभीर प्रतिकिया हुई न होती है, क्योंकि भारत के लोग ऐसी–ऐसी बातें सुनने के अभ्यस्त हों चुके हैं तथा समाज की ओर से प्रतिकिया आने के पूर्व ही संघ परिवार जिसकी इन मामलों मे स्वयं की विश्वसनीयता नही है वह ऐसे गलत आदेशों का लाभ उठाने के उद्देश्य से इतना आगे बढकर चिल्लाना शुरू कर देता है कि बाकी लोग सोच ही नही पाते की उन्हें क्या करना चाहिए, फिर भी ऐसे आदेश खतरनाक तो है ही, सबको मिलकर इस प्रकार के आदेशों की अवहेलना करने की अपेक्षा विरोध करना चाहिए।